# गरूड़ पुराण में आश्रम धर्म

**सुमीता**
शोधार्थी, संस्कृत विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

पुराणों में विविध विद्याओं एवं गूढ़ तत्त्वों का समावेष है। इनमें वेदों, स्मृतियों, उपनिषदों, दर्षनों का ज्ञान निहित है। गरूड़ पुराण प्रत्येक भारतीय के जीवन को प्रभावित करता है। इसके अध्ययन से मनुष्य को अपने गन्तव्य ओर पाथेय का ज्ञान होता है। भारतवर्ष धर्मपरायण देष है। भारतीय ऋषियों, आचार्यों तथा धर्म विचार को ने धर्म के विषय में विविध प्रकार के मतों का निर्धारण किया है। मनु ने भी इस विषय में संकेत दिया है कि–

'स्वं–स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।''[1]

प्राचीन मनीषियों ने धर्म–पालन के लिये ही आश्रम व्यवस्था का निर्धारण किया है। वेदों में मानव की आयु सौ वर्ष तक मानी गई है। मनुष्य को स्वस्थ रहकर सौ वर्ष जीने की अभिलाषा करनी चाहिये।[2] इस आधर पर प्रत्येक आश्रम के लिये समयावधि पच्चीस वर्ष तक मानी जा सकती है।

आश्रम शब्द आङ् पूर्वक श्रमु धातु से धञ् प्रत्यय करके निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है पर्णषाला, कुटिया, संन्यासियों का आवास, कक्ष, विद्यालय और प्राचीन भारतीय धार्मिक जीवन की चार अवस्थायें।[3] आचार्य मनु ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, तथा संन्यास रूप चार आश्रमों को स्वीकर करते है।[4]

गरूड़ पुराण में क्षमा, दम, दया, दान, निर्लोभता, स्वाध्याय, सरलता, अनसूया, तीर्थों का अनुसरण, सत्य, संतोष, आस्तिक्य, इन्द्रिय निग्रह, देवतार्चन, विषेष रूप से ब्राह्मणों का पूजन, अहिंसा, प्रियवादिता, अरूक्षता और चुगली न करना इनको चारों आश्रमों का सामान्य धर्म स्वीकार किया गया है।[5]

## ब्रह्मचर्य

प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य है। अथर्ववेद के अनुसार देवताओं ने भी ब्रह्मचर्य के माध्यम से ही मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी।[6] ब्रह्मचर्य से तात्पर्य है ब्रह्मवत् आचारण करना अथवा वेदार्थ के अनुसार आचरण।[7] श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि ब्रह्मचर्य नियम का पालन करने वाला और मन को वष में करने वाला शान्त चित्त ब्रह्मचर्य निष्ठ पुरुष मुझमें समाहित होता है।[8]

गरूड़ पुराण में भिक्षाचरण, गुरू शुश्रूषा, स्वाध्याय, संध्या तथा अग्नि कार्य ब्रह्मचारियों के धर्म बताये है।[9] वहाँ ब्रह्मचारी के उपकुर्वाण तथा नैष्ठिक दो भेद बताये गये हे। जो द्विज विधिवत् वेदादि का अध्ययन करके गृहस्थाश्रम में

प्रविष्ट हो जाता है वह उपकुर्वाण होता है। मृत्यु पर्यन्त जो गुरूकुल में निवास करते हुये वेदों का अध्ययन करते है वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहे जाते हैं।[10]

ब्रह्मचारी को वृद्धजनों का अभिवादन करना चाहिये। संयमी होकर उसे स्वाध्याय के लिये एकाग्रचित्त होकर गुरू की सेवा करते हुये उसके अधीन रहना चाहिये।[11] गुरू द्वारा बुलाये जाने पर उनके पास जाकर अध्ययन करना चाहिये। भिक्षा में जो भी प्राप्त हो उसे चरणो में समर्पित करें एवं मन, वाणी और शरीर द्वारा गुरू के हितकारी कार्यों में सदा संलग्न रहे।[12] यहाँ ब्रह्मचारी के लिये दण्ड, मृगचर्म, यज्ञोपवीत और मेखला धारण करने का निर्देष है।[13]

ब्रह्मचारी को अग्निकार्य करके गुरू की आज्ञा से विनयपूर्वक आपोऽषान–क्रिया (भोजन से पूर्व तथा अन्त में आचमन करना) करके भिक्षा से प्राप्त अन्न को निन्दा किये बिना मौन रहकर ग्रहण करना चाहिये।[14] ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये उसे एक ही घर का अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये। रोग अथवा आपत्ति होने पर कोई नियम नहीं है। श्राद्ध में बुलाये जाने पर इच्छानुसार भोजन कर सकता है। ब्रह्मचारी को किसी भी अवसर पर मधु–मद्य–मांस या उच्छिष्ट अन्न का सेवन निषेध है।[15] गरूड़ पुराण मानता है कि अपने देह को क्षीण करता हुआ जितेन्द्रिय द्विज ब्रह्मचारी ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है तथा उसका पुनः जन्म नहीं होता।[16]

## गृहस्थाश्रम

ब्रह्मचर्य आश्रम के पष्चात गृहस्थाश्रम आता है। मानव जीवन के पच्चीस से पचास वर्ष का समय गृहस्थ के लिये निर्धारित किया गया है। गृहस्थ शब्द गृह+स्था+क (सुपि स्थः इति क) करके निष्पन्न होता है।[17] ऋग्वेद का 'विवाह सूक्त'[18] इसी आश्रम की ओर संकेत करता है।

अतिथि सत्कार गृहस्थों का परं कर्त्तव्य माना गया है। यम ने अपने द्वार पर आये अतिथि नचिकता के तीन दिन प्रतीक्षा करने के कारण तीन वर माँगने को कहा था क्योंकि यदि किसी अल्पबुद्धि गृहस्थ के घर से कोई ब्राह्मण या अतिथि भूखा–प्यासा जाता है तो वह उस गृहस्थ के सब पुण्य, आषायें और सुकृत्य ले जाता है।19 मनुस्मृति में गृहस्थाश्रम की प्रषंसा करते हुये कहा गया है कि जिस प्रकार सभी नद और नदियाँ समुद्र में जाकर आश्रय लेती है, उसी प्रकार सभी आश्रम भी गार्हस्थ्याश्रम में आश्रित हैं।[20]

गरूड़ पुराण के अनुसार विद्याध्ययन समाप्त करके, गुरू को दक्षिणा प्रदान कर उनकी आज्ञा से षिष्य स्नानकर ब्रह्मचर्यव्रत की समाप्ति करे। तदनन्तर वह सुलक्षण, सुन्दर, मनोरमा, असपिण्डा, अवस्था में छोटी, आरोग्या, भ्रातृमती, भिन्न

गोत्रवाली कन्या से विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेष करे।[21] अग्नि कार्य, अतिथि सेवा, यज्ञ, दान और देवार्चन ये सभी गृहस्थों के धर्म माने गये हैं।[22]

गृहस्थाश्रमी को वेदार्थ एवं अन्य विविध शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिये। योगक्षेम आदि की सिद्धि के लिये वह ईष्वर की उपासना करे।[23] वह प्रतिदिन स्नान करके देवताओं तथा पितरों का तर्पण तथा पूजन करे। उसको वेद, पुराण तथा इतिहास का यथाषक्ति अध्ययन एवं जप करना चाहिये।[24] तत्पष्चात् भूत, पितर, देव, ब्रह्म और मनुष्य जाति के लिये गृहस्थ बलिकर्म, स्वधा, होम, स्वाध्याय तथा अतिथि सत्कार करना चाहिए।[25]

गृहस्थ प्रतिदिन स्वाध्याय करे, केवल अपने लिये अन्न ला बनायें। स्ववासिनी, वृद्ध, गर्भिणी, व्याधिपीड़ित, कन्या, अतिथि तथा भृत्यों को भोजन प्रदान कर गृहस्वामिनी और उसका पति शेष बचे हुये अन्न को ग्रहण करे।[26] अग्नि में पञ्चप्राणाहुति देकर अन्न की निन्दा न करके उसे भोजन करना चाहिये।[27] गृहस्थ को भिक्षुक को सत्कार पूर्वक भिक्षा देनी चाहिये।[28]

गृहस्थ को वाणी, हाथ, पैर की चंचलता एवं अतिभोजन करने से बचना चाहिये। संतुष्ट श्रोत्रिय तथा अतिथि को विदा करते समय ग्राम की सीमा तक उसका अनुगमन करना चाहये।[29] गृहसथ अपने इष्ट मित्रों एवं बन्धु–बान्धवों के साथ दिन का शेष भाग व्यतीत करे। तदनन्तर सांयकालीन संध्योपासना करके वह पुनः अग्निहोत्रकर भोजन ग्रहण करे।[30] उसे अपने भृत्यों के साथ बैठकर अपने हित का चिन्तन भी करना चाहिये। तदनन्तर ब्रह्ममुहूर्त में उठाकर धनादि से ब्राह्मण को संतुष्ट कर वृद्ध, दुःखी एवं भार ढोने वाले पथिको को भलोभाँति मार्ग, दिखाकर प्रसन्न करना चाहिये।[31] स्पष्ट है कि गृहस्थ धर्म सभी धर्मों से महनीय धर्म है।

## वानप्रस्थाश्रम

जीवन यात्रा का तृतीय चरण वानप्रस्थ आश्रम है। इसका समय पचास से पचहत्तर वर्ष की आयु तक है। आचार्य मनु वानप्रस्थी उसे मानते हैं जो ब्रह्मचर्य में पूर्ण विद्या पढ़कर, समावर्तन सम्पादिक कर गृहस्थाश्रम में रहकर शास्त्रोक्त विधि से इन्द्रियों को रोककर वन में वास करे।[32] याज्ञवल्क्य भी वन में रहने को वानप्रस्थ स्वीकार करते हैं।[33]

वानप्रस्थ कब स्वीकार करना चाहिये इस विषय पर वर्णन है कि जब शरीर झुर्रियों से युक्त हो जाये, पुत्र के भी पुत्र उत्पन्न हो जाये, केष पक जाये तो गृहस्थ को वन की ओर प्रस्थान करना चाहिये।[34] वानप्रस्थी के आचरण पर भागवत पुराण कहता है कि पुत्र, पत्नी, गुरूजन एवं बन्धु–बान्धवों को मार्ग में

मिले पथिक के समान समझना चाहिये।[35] उसे अपने वृद्ध माता–पिता, छोटे बच्चों और उनके जीवन निर्वाह की चिन्ता छोड़ देनी चाहिये।[36]

गरूड़ पुराण इस विषय में कहता है कि वानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट हुये व्यक्ति को अपनी पत्नी के संरक्षण का भार पुत्रों पर डालकर अथवा पत्नी को साथ लेकर वन को जना चाहिये।[37] वानप्रस्थ धर्म का पालन करने वाले को ब्रह्मचर्य व्रत निर्वाह करते हुये अपनी श्रौत एवं गृह अग्नि के साथ वन को जाना चाहिये। शान्त एवं क्षमावान रहकर देवोपासना में निमग्न रहकर अग्नि, पितरों, देवताओं, अतिथियों तथा भृत्यों को संतुष्ट करना चाहिये।[38]

वानप्रस्थी के नियमों के विषय में वहाँ कहा गया है कि वह दाढ़ो, जटा तथा लोमराषि को धारण करे। इन्द्रियों का दमन करे, त्रिकाल स्नान करे एवं अपने को दान ग्रहण करने से दूर रखे।[39] उसे स्वाध्याय भगवद्ध्यान तथा लोगों के हितसाधन में लगे रहना चाहिये। वानप्रस्थी के पास जो कुछ शेष बचा हो, उसका भी आष्विन मास में परित्याग करना चाहिये।[40]

वानप्रस्थी को भूमि पर सोना चाहिये और कृत्यों का सम्पादन फलों से ही करना चाहिये। वह ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि के मध्य स्थिर रहे और वर्षा ऋतु में स्थण्ड़िल पर शयन करे।[41] हेमन्त ऋतु में आर्द्रवस्त्रों को धारण करके योगाभ्यास के द्वारा अपने दिन व्यतीत करे। वह क्रोध न करे एवं सुख–दुःख में समान भाव रखे।[42] वानप्रस्थ संन्यास का पूर्वरूप है जिसमें जनकल्याण की भावना विद्यमान थी।

## संन्यास आश्रम

आश्रम व्यवस्था का अन्तिम अर्थात् चतुर्थ सोपान संन्यास आश्रम है। संन्यास शान्तिपूर्ण मृत्यु के वरण की तैयारी है। मुण्डकापनिषद् में भी कहा गया है कि जो वेदान्त ज्ञान द्वारा परमेष्वर को जान चुके है तथा संन्यास एवं योग द्वारा शुद्ध हो चुके हैं। ऐसे साधक शरीर त्यागकर ब्रह्मलोक को प्राप्त होते है वहाँ परं अमृतत्व पाकर जीवन मुक्त हो जाते हैं।[43]

मनुस्मृति में संन्यासी के लक्षण के विषय में कहा है कि जो प्रजापत्य यज्ञ करके यज्ञोपवीत, षिखादि चिन्हों को छोड़कर आहवानीयादि पाँच अग्नियों को प्राण, व्यान, उदान, अपान और समान में आरोपण कर परमेष्वर प्राप्ति में मग्न हो जाता है उसे सन्यासी कहा जाता है।[44] श्रीमद्भागवत् के अनुसार संन्यासी व्यक्त सामग्री म से कुछ भी ग्रहण न करे। सर्वजन हिताय चिन्तन करे तथा किसी के आश्रित न रहता हुआ भगवान नारायण का भजन करे। [45]

गरूड़ पुराण में बताया है कि गृहस्थ आश्रम एवं वानप्रस्थाश्रम में विहित सभी इष्टियों को सम्पन्न करके एवं प्राजापत्य इष्टि को भी सम्पन्न करके अन्त में वेद–विहित विधान से समस्त श्रौताग्नियों को अपने में आरोपित करके संन्यास ग्रहण किया जा सकता है।[46] संन्यासी के नियम एवं कर्त्तव्य के विषय में में वहाँ कहा गया है कि संन्यासी को सभी प्राणियों को हितैषी होना चाहये, शान्त एवं त्रिदण्ड़ी होना चाहिये। उसे कमण्डलु धारण करना चाहिये।[47]

सभी प्रकार के सुख–साधन युक्त भोगों का परित्याग करके भिक्षार्थी होकर ग्राम का आश्रय ग्रहण करना चाहिये। वह प्रमादरहित होकर भिक्षाटन करे और सांयकाल ग्राम में न दिखाई पड़े। जो ग्राम भिक्षुकों से रहित हो, वहाँ पर वह लोभषून्य होकर प्राणमात्र के लिये भिक्षा माँगे।[48] यम नियम का पालन करते हुये योगसिद्ध होकर संन्यासी को परमंहस बनना चाहिये। इस प्रकार रहने वाला सन्यासी शरीर का परित्याग कर इस लोक में अमरत्व को प्राप्त होता है।[49]

निष्कर्षतः वर्तमान समय में जो विषमतायें है वह आर्ष सिद्धान्तों की अवहेलना है। मानव समाज में शान्ति स्थापित करने के लिये हमें आश्रम व्यवस्थागत नियमों का पूर्णतया पालन करना चाहिये जिससे सामाजिक एवं वैयक्तिक उत्कर्ष हो। वस्तुतः गरूड़ पुराण में निर्दिष्ट आश्रम व्यवस्था को यदि हम जीवन में चरितार्थ करे ले तां सहज ही परम लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकेंगे।

## सन्दर्भग्रन्थ सूची


1 मनुस्मृति, 2.20
2 पष्यमे शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्, यजुर्वेद, 36.14
3 संस्कृत हिन्दी शब्दकोष, पृष्ठ–165
4 ब्रह्मचारी गृहस्थष्च वानप्रस्थो यतिस्तथा। मनुस्मृति, 6.57
5 क्षमा दमो दया दानमलोभाभ्यास एव च
आर्जवञ्चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा।।
सत्यं सन्तोष आस्तिक्यं तथा चेन्द्रियनिग्रहः।
देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विषेषतः।।
अंहिसा प्रियवादित्वमपैषुन्यमरूक्षता।
एते आश्रमिका धर्माष्चातुर्वर्ण्यं ब्रवीम्यतः।। गुरूड़ पुराण, 1.49.21–23
6 ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाध्नत्। अथर्ववेद, 11.5.19
7 ब्रह्मणे वेदार्थ चर्यम् आचरणीयम। हलायुध कोष, पृष्ठ–484
8 प्रषान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः।। गीता, 6.14
9 भिक्षाचर्य्याथ शुश्रूषा गुरोः स्वाध्याय एव च।
संन्यासकर्माग्निकार्यञ्च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणः ।।गरूड़ पुराण, 1.49.5
10 ब्रह्मचार्य्युपकुर्वाणो नेष्ठिको ब्रह्मतत्परः।।
योऽधीत्य विधिवद्वेदान्गृहस्था श्रममाव्रजेत्।
उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिकः।। वही, 1.49.6
11 ततोऽभिवादयेद् वृद्धानसावहमिति ब्रुवन्।

गुरूञ्चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः। वही, 1.94.13
12 आहूतष्चाप्यधीयीत सर्वञ्चास्मै निवेदयेत्।
हितञ्चास्यापरान्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः।। वही, 1.94.14
13 दण्डाजिनोपवीतानि मेखलाञ्चैव धारयेत्। वही, 1.94.15
14 कृताग्निकाय्यो भुञ्जीत विनीतो गुर्वनुज्ञया।
आपोशानक्रियापूर्वं सत्कृत्वाऽन्नमकुत्सयन्।। वही, 1.94.17
15 ब्रह्मचर्य्यास्थितोऽनेकमन्नमद्यादनापदि।
ब्राह्मणः काममष्नीयात् श्राद्धे व्रतमपीडयन्।।
मधुमासं तथा स्विन्नमित्यादि परिवर्जयेत्।। वही, 1.94.18–19
16 अनने विधिना देहं साधयेद्विजितेन्द्रियः।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेह जायते पुनः।। वही, 1.94.32
17 हलायुध कोष, पृष्ठ–280
18 ऋग्वेद, 10.85
19 आशा प्रतीक्षे संगतसुनृताङ्चेष्टापूर्ते पुत्रपषूष्च सर्वान्।
एतदवृङ्क्से पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानष्नन् वसति ब्राह्मणोगृहे।। कठोपनिषद्, 1.8
20 यथानदीनदाः सर्वे समुद्रे यान्ति संस्थितिम्।
एवमाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।। मनुस्मृति, 6.60
21 गुरवे च धनं दत्त्वा स्नात्वा च तदनुज्ञया।।
समापित ब्रह्मचर्य्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीत्।।
अरोगिणीं भ्रातमतीमसमानार्षगोत्रजाम्। गुरूड़ पुराण, 1.95.1–3
22 अग्नयोऽतिथिषुश्रूषा यज्ञो दानं सुरार्चनम्।
गृहस्थस्य समासेन धर्मोऽयं द्विजसत्तम।। वही, 1.49.9
23 वेदार्थानधिगच्छेच्च शास्त्राणि विविधानि च।
योगक्षेमादिसिद्धयर्थमुपेयादीष्वरं गृही। वही, 1.96.10
24 स्नात्वा देवान्पितृंष्चैव तर्पयेदर्चयेत्तथा।
वेदानथ पुराणानि सेतिहासानि शक्तितः।। वही, 1.96.11
25 बलिकमस्वधाहोमस्वाध्यायातिथि सत्क्रियाः।। वही, 1.96.12
26 स्वाध्यायमन्वहं कुर्य्यान्न पचेच्चान्नमात्मने।
बालस्वधासिनी वृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः।।
संभोज्यातिथिकृत्यांष्च दम्पत्योः शेष भोजनम्।। वही, 1.96.15–16
27 प्राणाग्निहोमविधिनाऽष्नीयादन्नमकुत्सयन्।। वही, 1.96.16
28 संह्रत्य भिक्षवे भिक्षा दातव्या सुव्रताय च।। वही, 1.96.19
29 वाक्पाणिपादचापल्यं वर्जयेच्चाति भोजनम्।
श्रोत्रियं वातिथिं तृप्तमासीमान्तादनुव्रजेत्।। वही, 1.96.23
30 अहःषेषं सहासीत षिष्टैरिष्टैष्च बन्धुभिः।
उपास्य पष्चिमां सन्ध्यां हुत्वाग्नौ भोजनं ततः। वही, 1.96.24
31 कुर्य्याद् भृत्यैः समायुक्तैष्चिन्तयेदात्मनो हितम्।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय मान्यो विप्रोधनादिभिः।।
वृद्धात्तांनां समोदयः पन्था वै भारवाहिनाम्। वही, 1.96.25–26
32 एवं गृहसथाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः।। मनुस्मृति, 6.1
33 वनप्रस्थः एव वानप्रस्थः। याज्ञवल्क्यस्मृति, 3.45
34 गृहस्थस्तु यदा पष्वेद वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्।। मनुस्मृति, 6.2

35 पुत्रदाराप्तवन्धूनां सङ्गमः पान्थसङ्गम, भागवतमहापुराण, 11.17.53
36 अहौ मे पितरौ वृद्धौ भार्या बालात्मजात्मजाः।
अनाथा मामृते दीना कथं जीवन्ति दुःखिताः।। वही, 11.17.57
37 वानप्रस्थाश्रमं वक्ष्ये तत्करस्तु महषर्यः।
पुत्रेषु भार्य्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा।। गरूड़ पुराण, 1.102.1
38 वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साग्निः शमदमक्षमी।
अर्चयेत्साग्निकान्विप्रान्पितृदेवातिथींस्तथा।। वही, 1.102.2
39 भृत्यांस्तु तर्पयेच्छष्वज्जटा लोमभृदात्मवान्।
दान्तस्त्रिसवनं स्नायान्निवृत्तष्च प्रतिग्रहात्। वही, 1.102.3
40 स्वाध्यायवान्ध्यानषीलः सर्वभूतहिते रतः।
अह्नो मासस्य मध्ये वा कुर्य्यात्स्वार्थपरिग्रहम्।। वही, 1.102.4
41 निराश्रयं स्वपेदभूमौ कर्म कुर्य्यात्फलं विना।
ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेषयः।। वही, 1.102.5
42 आर्द्रवासास्तु हेमन्ते योगाभ्यासादिनं नयेत्।
अक्रुद्ध परितुष्टष्च समस्तस्य च तस्य च।। वही, 1.102.6
43 वेदान्तविज्ञानसुनिष्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्ध सत्वाः।
ते ब्रह्म लोकेषु परान्तकाले परावृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।। मुण्डोपनिषद्, 32.6
44 प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम्।
आत्मत्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात्।। मनुस्मृति, 6.32
45 एक एवं चरेद् भिक्षुरात्मारामोऽनपाश्रयः।
सर्वभूतसुहृच्छान्तो नारायणपरायणः। श्रीमद्भागवत, 7.13.3
46 वनान्निवृत्य कृत्येष्टिं सर्ववेदप्रदक्षिणम्।
प्राजापत्यं तदन्तेऽपि अग्निमारोप्य चात्मनि।। गरूड़ पुराण, 1.103.1
47 सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्ड़ी सकमण्डलुः।। वही, 1.103.2
48 सर्वायासं परित्यज्य भिक्षार्थी ग्रामनाश्रयेत्।।
अप्रमत्तष्चरेद्वैक्ष्यं साहाद्वे नाभिलक्षितः।
वाहितैर्भिक्षुकै र्ग्रामे यात्रामात्रलोलुपः।। वही, 1.103.2–3
49 भवेत्परमंहसो वा एकदण्ड़ी यमादितः।
सिद्धयोगस्त्यजन्देहममृतत्वमिहाप्नुयात्।। वही, 1.103.4